देश को न्याय पालिका ही बचा सकती है

○कासिफ़ हैदर, एडवोकेट

'मीठा-मीठा गप कड़ुवा-कड़ुवा थू'। जब न्यायालय पक्ष में बोलता है तो नेता, सरकार सबकी आस्था न्यायपालिका में ऐसे बढ़ जाती है जैसे घनघोर बारिस में नदी में पानी और जब न्यायपालिका सरकारों, नेताओं की दुखती रग, अक्षमता, भ्रष्टाचार, अकर्मण्यता पर उंगली रख देती है तो इनके मुंह से न्यायपालिका के हद में रहने की ऐसी चीख निकलती है जैसे कुत्ते की पूँछ पर किसी का पैर पड़ गया हो।

२ जी स्पेक्ट्रम आवंटन घोटाला, मुख्य सतर्कता आयुक्त की दोषपूर्ण नियुक्ति, विदेशों में जमा कालाधन तथा कुछ अन्य मामलों में उच्चतम न्यायालय की सक्रियता से आहत देश के अब तक सबसे कमजोर व भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने वाले प्रधानमंत्री द्वारा न्यायपालिका को हद में रहने की नसीहत देने के कारण एक बार फिर यह बहस छिड़ गयी है कि न्यायपालिका की हद क्या है? यह पहला अवसर नहीं है जब यह हद याद दिलाने की कोशिश की गयी है इसके पहले भी कई अवसर ऐसे आये हैं जब ऐसी स्थितियाँ/परिस्थितियाँ आई हैं।

हमारा संविधान एक खिचड़ी की तरह है जिसमें सात देशों से उसकी अच्छी-अच्छी बातों को लेकर इसे तैयार किया गया है। जहाँ ब्रिटेन में संसद सर्वोच्च है वहीं अमेरिका में न्यायपालिका सर्वोच्च है लेकिन हमारे संविधान में विधायिका, कार्यपालिका व न्यायपालिका के रूप में तीन प्रमुख अंग बनाए गए हैं जिसमें सबकी अलग-अलग भूमिका निर्धारित है। संविधान के इन तीनों अंगों में सामंजस्य बहुत आवश्यक है अन्यथा संवैधानिक विफलता (Constitutional Failure) का खतरा उत्पन्न हो जायेगा। हमारे देश में संविधान की ही सत्ता सर्वोच्च है यही लोकतंत्र की वह जड़ है जहाँ से तीनो अंग कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका अपना ईंधन लेकर अपने अस्तित्व को बचाये रखे हैं।

लोकतंत्र में जनता सबसे अहम है जब तक संविधान बदला नहीं जाता इस संविधान के हिसाब से तो सबकुछ जनता द्वारा जनता के लिए ही किया जा रहा है।

आजादी के बाद इन ६४ वर्षों में सबसे अधिक समय लगभग ५२ वर्ष कांगेस ने ही राज किया है इसलिए न्याय पालिका से उसका टकराव भी पुराना है। कांग्रेस का न्यायपालिका से छत्तीस का आंकड़ा रहा है। आजादी के बाद जब संविधान निर्माण प्रक्रिया में था उस समय भी कांग्रेस के शलाका 'पुरूष पंडित जवाहर लाल नेहरू' न्यायपालिका को बहुत शक्तिशाली बनाने के पक्षधर नहीं थे। वे संसद को सर्वोच्च बनाना चाहते थे। हो सकता है उसका एक कारण यह रहा हो कि वे ब्रिटेन में पढ़े लिखे इसलिए वहाँ का प्रभाव उन पर रहा हो क्यों कि वहाँ संसद ही सर्वोच्च है। संविधान सभा में ६ जून १९४९ को सर्वोच्च न्यायालय के अधिकारों पर बहस के दौरान पंडित जी ने कहा था कि संसद की इच्छा पर कोई सर्वोच्च न्यायालय या कोई न्यायपालिका अपना निर्णय नहीं थोप सकती लेकिन उनके विरोध को दरकिनार करते हुए संविधान सभा ने न्यायापालिका को न्यायिक समीक्षा का अधिकार दे दिया। इस अधिकार से न्यायपालिका को तीनों अंगों के अधिकार क्षेत्र की सीमाएं घोषित करने और संसद द्वारा पारित किये गये कानूनों तथा कार्यपालिका के निर्णयों की न्यायियक समीक्षा का अधिकार प्राप्त हो गया।

विरोध का वह सिलसिला आज तक बदस्तूर जारी है। विचारणीय प्रश्न यह है कि जब कांग्रेस सत्ता में होती है तभी न्यायपालिका से उसको शिकायत क्यों होती है? क्या इसका अर्थ यह निकाला जाय कि कांग्रेस स्वतंत्र न्यायपालिका की विरोधी है? इस टकराव का एक कारण तो यह समझ में आता है कि कांग्रेस की निरंकुश सत्ता पर नकेल डालने का काम अब तक न्यायालयों ने ही किया है चाहे वह आर्टिकिल ३५६ का दुरुपयोग हो या झारखण्ड के चुनाव के बाद सरकार गठन का मामला। इलाहाबाद उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायमूर्ति जगमोहन लाल सिन्हा का इंदिरा गांधी का चुनाव अवैध घोषित करने वाला फैसला तो आपातकाल का आधार बना दिया गया। उसी समय ३८वें संशोधन के जरिये आपातकाल की घोषणा को न्यायियक समीक्षा की परिधि से बाहर कर दिया गया। ३९वें संशोधन के जरिये सर्वोच्च न्यायालय पर आधिपत्य कायम करना था। इन सबसे संतुष्टी न मिलने पर ४२वां संविधान संशोधन आया जिसमें प्रावधान कर दिया गया कि अब आगे संविधान में किए गये किसी भी संशोधन पर कोई उंगली नहीं उठा सकता। पंडित जवाहर लाल नेहरु की इच्छा को श्रीमती इंदिरा गांधी ने पूरा कर दिखाया कि संसद को संविधान में कुछ भी करने का अधिकार प्राप्त है उसकी किसी भी न्यायालय द्वारा न्यायिक समीक्षा नहीं की जा सकती है। निरंकुश सत्ता ने गुंडई का खुला प्रदर्शन करते हुए न्यायपालिका की अवमानना के साथ-साथ उसको धमकियाँ भी देने लग गयी थीं।

१९७६ में न्यायलयों पर आशिष्टता का आरोप लगाते हुए लोक सभा में कहा गया कि संविधान उच्च व उच्चतम न्यायालय को यह अधिकार नहीं देता कि किसी संवैधानिक संसोधन की वैधता का परीक्षण करें, ''दुर्भाग्य से अदालतों ने अपनी निर्धारित सीमाओं का उल्लंघन किया है''। एन.के.पी. साल्वे ने कहा कि वक्त आ गया है जब हमें संविधान को अदालतों से बचाना होगा। इतना ही नहीं प्रचण्ड बहुमत प्राप्त तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने स्वयं घोषणा कर दी कि हम मूल ढांचे के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते। (ज्ञात हो कि १९७३ में केशवानन्द भारती मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने मूल ढांचे के सिद्धान्त को प्रतिपादित करते हुए कहा था- ''जबकि संसद-संविधान के किसी भाग को संशोधित कर सकती है उसे संविधान के मूल ढांचे में परिवर्तन नहीं करना चाहिए'') और स्वर्ण सिंह की इस बात को कि न्यायधीशों ने इस वाक्य का आयात किया है, को और आगे बढ़ाते हुए कहा था कि मैं यह नहीं कहूंगी कि न्यायाधीशों ने इसका आयात किया है। चूंकि इसका किसी अन्य संविधान में अस्तित्व नहीं है इसलिए मैं तो यही कहूंगी कि उन्होंने इसका अविष्कार किया है।

श्रीमती गांधी के किचेन कैबिनेट के एक और चमचे सी.एम. स्टीफेन ने दो कदम और आगे बढ़ते हुए कहा ''अब इस संसद का अधिकार घोषित हो गया है जो असीमित है। संशोधनो के जरिए पास किये गये कानून किसी भी अदालत की सीमाओं से परे घोषित किये जाते हैं अब यह अदालतों के ऊपर है कि क्या उन्हें इसका उलंघन करना चाहिए? मैं नहीं जानता हूँ कि क्या उनके अंदर ऐसा करने का साहस होगा, लेकिन यदि वे ऐसा करती हैं, तो जैसा कानून मंत्री ने कहा, वह न्यायापालिका के लिए एक खराब दिन होगा। न्याधीशों के आचरण के जांच के संबंध में सदन की समिति बैठ रही है, हमारे पास अपने तौर-तरीके और मशीनरी मौजूद है''।

कांग्रेस ने साम, दाम, दण्ड, भेद का इस्तेमाल करके न्यायपालिका को अपने वश में करने की कई बार कोशिश की और कुछ अवसरों पर उसे उसमें सफलता भी मिली लेकिन अधिकांश उसे असफलता ही हाथ लगी आज न्यायपालिका की दृढ़ता का ही परिणाम है कि हमारे संविधान प्रदत्त मौलिक अधिकार पूरी तौर पर तो नहीं लेकिन कुछ हद तक सुरक्षित है।

इंदिरा गांधी ने न्यायपालिका को नीचा दिखाने का जो सिलसिला शुरू किया था राजीव गांधी ने भी उसे जारी रखते हुए शाहबानो केस में उच्चतम न्यायालय के निर्णय को आपास्त करने के लिए संविधान संशोधन करके न्यायपालिका के प्रति अपने प्रचन्ड बहुमत वाली कांग्रेस का इरादा साफ करते हुए यह सिद्ध कर दिया था कि मिस्टर क्लीन भी उसी दलदल का एक हिस्सा हैं।

कांग्रेस नीत संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन के प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने अपनी पहली पारी में भी इसी तरह की नसीहत न्यायपालिका (उच्चतम न्यायालय) को दे चुके हैं अब एक बार फिर उन्होंने अपनी अक्षमता, भ्रष्टाचार को छिपाने के लिए न्यायपालिका को बंदर घुड़की दी है।

आम जन के लिए संतोषजनक बात यह है कि जिस कार्यक्रम में उन्होंने यह नसीहत दी उसमें स्वयं माननीय मुख्य न्यायाधीश एस. एच. कपाड़िया मौजूद थे और उन्होंने बहुत ही जोरदार ढंग से इसका जवाब देकर यह सकेंत भी दे दिया कि न्यायपालिका इन बंदर घुड़कियों से डरने वाली नहीं है।

न्यायपालिका अपना संविधान प्रदत्त अधिकार क्षेत्र बहुत अच्छी तरह से जानती है और उस दायरे में रहकर ही काम करती है यदि कभी कहीं अतिक्रमण हो भी गया तो उस पर स्वयं ही एक्शन ले लिया है। ऐसे अनेक अवसर आये हैं जब न्यायालयों ने स्वयं ऐसे मामलों का संज्ञान लिया है और अपनी हद से बाहर जाने वालों को फटकारा भी है। न्यायमूर्ति ए.के. माथुर एवं न्यायमूर्ति मार्कन्डेय काटजू की बेंच ने ऐसे ही एक निर्णय में अपने आदेश में कहा कि हाल के कुछ मामलों में ऐसा लगता है कि न्यायालय ने कार्यपालिका के अधिकार क्षेत्र अथवा नीतिगत मामलों में दखल दिया है। आगे आगाह करते हुए कहा कि यदि न्यायाधीश भी निर्वाचित प्रतिनिधियों अथवा प्रशासकों की तरह काम करेंगे तो ऐसी स्थिति में न्यायधीशों का निर्वाचित प्रतिनिधियों की तरह ही चुनाव होगा अथवा प्रशासकों की तरह चुनाव व प्रशिक्षण होगा जो निश्चित ही नुकसानदायक होगा। यही कारण है कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता बनाये रखने का महत्वपूर्ण बिन्दु इसे राजनितिक अथवा प्रशासनिक प्रक्रिया से दूर रखा गया है।

Judicial Activition के आलोचक न्यायमूर्ति मार्कण्डेय काटजू ने भी आंध्रप्रदेश